

अध्याय सातवाँ

॥श्री गणेशाय नमः॥ श्री सरस्वत्यै नमः॥ श्री सिद्धारूढाय नमः॥

"श्री सिद्धारूढजी की अनेक लीलाएँ हैं जिन्हें बयान करने से मनुष्य की चित्तशुद्धि होती है तथा तत्काल उसका अज्ञान नष्ट होकर उसे उत्तम ज्ञान की प्राप्ति होती है।"

हे सिद्धारूढनाथजी, आपके दिव्य चरणों पर मस्तक रखकर आपकी जीवनी आप को ही कहलवाने की मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ। आप के चरणों का मन ही मन चिंतन करने से, दयाघन ऐसे आप, प्रेरणा देकर तथा मेरे हृदय में निवास करके यह ग्रंथ पूर्ण रूप से लिखवाईए। सिद्धयोगी का अवतार धारण करके आप विविध प्रकार की लीलाएँ रचते हैं, मुमुक्षु को उपदेश करके भक्तों को विना विलंब संकटों से बचाते हैं। अस्तु। पिछले अध्याय में, उडुपी तीर्थ जाकर वहाँ भगवान श्रीकृष्ण के दर्शन करके निर्विकल्प समाधि (ऐसी समाधि अवस्था जिसमें ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान आदि भेद नष्ट हो जाते हैं) अवस्था में रहने की कथा का वर्णन किया था। उस क्षणिक समाधि से भी हर्षित होकर तथा शरीर ये प्रारब्ध के अधीन होते हुए भोगदायक (शरीर की माध्यम से सुख तथा दुख का अनुभव करानेवाला) है यह जानते वे आगे निकले। धर्मस्थल तीर्थ देखकर वे आगे गोकर्ण तीर्थ पहुँचे। वहाँ स्थित कोटीतीर्थ में चरण धोकर उन्होंने भगवान श्रीमहाबलेश्वर (श्रीशिवजी) के दर्शन किये। तब उन्होंने मन में कहा, 'गो' यानी शरीर के इंद्रिय, उनमें 'कान' (गो-कर्ण) यह एक श्रेष्ठ इंद्रिय है, क्योंकि इस कान के द्वारा ही श्रेष्ठ वचन (तत्त्वमसि) का श्रवण करने से मुमुक्षु इस भवसागर को पार करके मुक्ति प्राप्त करता है। इस प्रकार चिंतन करते हुए सिद्धनाथजी बाहर आये और वहाँ के एक जटाधारी साधु को देखकर उन्होंने उसका हाथ थाम लिया और वे दोनों तेजी से सागर की ओर निकले। तब वह जटाधारी साधु बोला, "मुझसे ठंढक सही नहीं जाती।" तब सिद्धजी ने एक बड़ी फटी चटाई लेकर उसके गले में लटकाई और बोले, "यह देख तुम्हारे लिए शाल तयार हुई।" उन्होंने सागर किनारे पड़ी हुई सीपियाँ इकट्ठी करके उसके (जटाधारी के) गले में पहनाई। दूकान से कुंकुम माँगकर उससे उसका चेहरा चुपड़ दिया। उसके एक हाथ में एक फूटा हुआ मटका तथा दूसरे हाथ में झाड़ू देकर उन्होंने

कहा, "ये तो सचमुच ही भैरव का भेष (श्रीशिवजी के एक अवतार को भैरव कहते हैं।) प्रतीत हो रहा है। इतने में उन्होंने उसी मार्ग से जाते हुए एक ढोल बजानेवाले को देखा। उसे बुलाकर सिद्धयतिजी ने उसे ढोल बजाने के लिए कहा। इस प्रकार ढोल बजाते हुए वे तीनों निकल पड़े। दुकानों के सामने खेल दिखाकर उन्होंने बहुत पैसे कमाये, तत्पश्चात् वे एक श्रीशिवजी के मंदिर गये। वहाँ एक संत ज्ञानेश्वरी (तेरहवीं शताब्दी में महाराष्ट्र के प्रख्यात संत श्रीज्ञानेश्वर महाराजजी ने पहली बार श्रीमद् भगवद्गीता का मराठी भाषा में भाषान्तर किया, उसी ग्रंथ को ज्ञानेश्वरी कहते हैं।) पढ़कर सुना रहे थे और बहुत सारे भक्तगण श्रवण करने हेतु बैठे थे। उस संत के समीप जाकर सिद्धनाथजी ने कहा, "हे महात्मा, आप तो प्रतिदिन पुराणकथा पढ़कर सुनाते हैं। आज तुम्हारे श्रोतागणों को मेरी वाणी सुनने दीजिए। भगवद्गीता में दिये हुए 'ऊर्ध्वमूल' इस श्लोक का अर्थ समझाकर मैं सभी को आनंदित करूँगा।" सिद्धगुरुजी के चेहरे का तेज देखकर उस संत ने "अवश्य" कहा और स्वयं का स्थान सिद्धगुरुजी को प्रदान करके वह श्रोतागणों में जाकर बैठा। सिद्धनाथजी ने पूर्वार्ध पढ़कर उसमें दिया हुआ तत्त्व तथा सत्य कथन करके प्रस्थापित किया। उसपर श्रोतागणों को वैराग्य के बारे में दिए हुए अर्थ को बोधित किया, जिससे सभी ब्राह्मण मंडली को वह पसंद आया। पुराण कथा की समाप्ति के बाद भगवान की आरती उतारी गयी। आरती की थाली में हररोज की अपेक्षा से चौगुना पैसा इकट्ठा हुआ देखकर वह संत बहुत आनंदित हुआ। परंतु जब जटाधारी ने वह धन लिया तब तो संत उसपर बहुत क्रोधित हुआ। सभी श्रोतागण ने कहा, "पैसे लेने के लिए बड़ी तेजी से चले तो आये, लेकिन आज पुराणकथा उन्होंने पढ़कर सुनाया है, इसलिए इन पैसों में से कमसे कम आधा हिस्सा उनको दीजिए।" संत ने इस बात को स्वीकार किया। उसपर सिद्धनाथजी ने कहा, "हे महात्मा, अगर आप पैसों के लिए पुराणकथा पढ़कर सुनाते हैं, तब ये लीजिए पैसे," ऐसा कहते हुए उन्होंने स्वयं की झोली में से सोने की सात मुद्राएँ निकालकर उसको दे दी। वह संत मन ही मन पछताया और दीनभाव से सिद्धारूढ़जी के चरणों पर गिर गया। उस समय सब लोग दंग रह गये और कहने लगे की यह कोई महापुरुष होगा

जिसके केवल दर्शन से ही पापों का विनाश होता है, इस जगत में होने वाले इसके भक्तगण धन्य हैं।

तब सिद्धनाथजी जटाधारी साधु के साथ नर्तन करते हुए आगे चल रहे थे की उन्होंने एक ब्राह्मण को नैवेद्य लेकर मंदिर की ओर जाते हुए देखा। उसे देखकर सिद्धनाथजी ने उसे पूछा, "ये सब पक्वान लेकर कहाँ जा रहे हो?" उसने कहा, "ये सभी पक्वान मैं श्रीमहाबलेश्वरजी को अर्पण करने के लिए ले जा रहा हूँ।" उसपर सिद्ध बोले, "वह श्रीमहाबलेश्वर मैं स्वयं ही हूँ। पहले यह सिद्ध कर दिखाओ की मैं महाबलेश्वरजी नहीं हूँ, तत्पश्चात ये पक्वान उस पत्थर के शिवलिंग के सामने जाकर रखना।" उसने कहा, "तुम तो एक लालची प्राणी हो। कौन तुम्हें भगवान का दर्जा देगा?" इतने में जटाधारी साधु उस ब्राह्मण के हाथ से वह नैवेद्य छीनने के लिए आगे लपका। उसपर वह ब्राह्मण एकसाथ शोर मचाने लगा। वह शोरगुल सुनकर बहुत सारे लोग वहाँ इकट्ठा होकर जटाधारी साधु को पीटने के लिए तैयार हुए। तब सिद्धजी ने कहा, "आप सब लोग आगेपीछे कुछ भी सोचे विना इस जटाधारी साधु को पीटने के लिए निकले हैं। अगर श्रीमहाबलेश्वरजी संपूर्ण जगत में व्याप्त हुआ है, तो क्या इस जटाधारी साधु में वह नहीं होगा? केवल पत्थर की मूर्ति को अन्न अर्पण करने से वह (श्रीमहाबलेश्वरजी) तृप्त नहीं होता। साधु संन्यासी तथा भूखे प्राणियों को अन्न देने से निश्चित ही परमात्मा संतुष्ट होता है। 'अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः' ऐसा भगवद्गीता में एक श्लोक है, उस में भगवान कहते हैं, 'मैं स्वयं (भगवान) अग्निरूप से सभी प्राणियों के शरीर में निवास करता रहता हूँ।'" यह सुनकर वे चुप हो गये और उन्होंने वह नैवेद्य जटाधारी साधु को अर्पण किया। उसपर उन्होंने कहा, "सचमुच ही हम अज्ञानी हैं। आप जैसे महात्माओं के कारण ही हमारा उद्धार होता है।" बाद में तीनों ने वह पक्वान आपस में बाँटकर खाये और हर्षित हुए। तत्पश्चात मिले हुए ऐसे सिद्धारूढ़जी ने ढोल बजानेवाले को देकर उसे भेज दिया। उसके बाद दोनों यतिओं ने नागतीर्थ में स्नान किया और वे उस जगह चार दिन ठहरे। वहाँ जबतक सिद्धनाथजी रहे, तबतक ब्राह्मण आकर उन्हें वेदांत शास्त्रों के बारे में प्रश्न पूछते थे और सिद्धजी

के उत्तरों से उनके संदेहों का निवारण होता था। उसपर अती आनंदित होकर वे सिद्धारूढ़जी को प्रणाम करते थे।

उसके बाद सिद्धनाथजी आगे उळवी नाम के गाँव की दिशा में निकले। यहा प्रख्यात संत श्रीबसवेश्वरजी (इ.स. ११३४ -११९६, वीरशैव अथवा लिंगायत पंथ के संस्थापक, जिन्हें कन्नडभाषक प्रेम से 'बसवण्णा' नाम से संबोधित करते हैं।) का समाधिस्थान है। अति आदर से उन्होंने श्रीबसवण्णाजी की समाधि देखकर, हुबली होते हुए वे पंढरपुर की ओर निकले। मार्ग में कल्याण तथा अन्य गाँव देखते हुए वे पंढरपुर पहुँचे। अति आनंद से उन्होंने श्रीपांडुरंग (श्री विष्णुजी का नाम) की मूर्ति के दर्शन करके वे नाशिक की ओर निकले। वहाँ गोदावरी तीर्थ, पंचवटी आदि देखकर उन्होंने आगे गुप्त गुफा में बसे कालनारायण के दर्शन किये। त्र्यंबकेश्वरजी तथा ठाकुरजी के दर्शन करके वे श्रीकृष्ण दर्शन के लिए वे व्दारका गये। श्रीकृष्ण का दर्शन करके मंदिर के बाहर आते ही उनकी भेंट एक वैष्णव से हुई। उसने सिद्धनाथजी से पूछा, "आप मायावादी (एक ब्रह्म मात्र सत्य है बाकी जगत में दिखाई पड़नेवाला यह सारा फैलाव यह मिथ्या है ऐसा माननेवाले लोग) लग रहे हैं।" सिद्धारूढ़जी ने कहा, "हाँ" उसपर वह सतगुरुजी से बोला, "क्या यह जगत केवल घटनाओं से (क्रियाकलापों से) भरा या प्रतिभास (भ्रम) है?" यह सुनकर सिद्धनाथजी ने कहा, "भ्रामक अथवा सपने के समान।" तब उस ब्राह्मण ने पूछा, "यतिवर्य, यह बताईए की सपने का निश्चित अधिष्ठान (स्थान) कौन सा होता है? अगर ब्रह्म को सपने का अधिष्ठान समझें तो ब्रह्मज्ञानी मनुष्य को सपने दिखने नहीं चाहिए, क्योंकि जहाँ ज्ञात (समझा हुआ) यह अधिष्ठान है वहाँ अध्यास (झूठा ज्ञान) हो ही नहीं सकता। अगर आत्मा को अधिष्ठान समझें तो 'त्वं' पद के स्वरूप की खोज करनेवाले अधिकारी मनुष्य को जब आत्मज्ञान प्राप्त होता है, तब उसे सपने दिखाई नहीं देने चाहिए। क्योंकि उसके सभी भ्रमों का निवारण हुआ रहता है।" सिद्धावधूत ने कहा, "जागृत अवस्था का अधिष्ठान जो चैतन्य है, उस चैतन्य पर निर्माण हुए पटल के कारण कल्पित सपना दिखाई पड़ता है। क्योंकि शरीर के अंदर जो चैतन्य है उसे सदोष पटल के कारण सपने का अध्यास होता है। उस चैतन्य को अहं, इदं इनकी प्रतीति होते ही सपने का लय होकर वह अपने

कारण में लीन हो जाता है। इसीलिए कारण शरीर के अंतर्गत बसा चैतन्य यही सपने का अधिष्ठान है। यह सिद्धनाथजी का कथन सुनकर वह ब्राह्मण आनंदित हुआ और उसने उन्हें घर ले जाकर भोजन अर्पण किया।

उसके पश्चात सिद्धनाथ वहाँ से चल पड़े और उज्जयिनी नगर आये, वहाँ उन्होंने भगवान महाकालजी (श्रीशिवजी) के दर्शन किये और मन ही मन कहने लगे की यह तो मेरी एकांश शक्ति ही है। वहाँ से वे ॐकारेश्वर आये, जहाँ उन्होंने एक सरोवर देखा। इस युग के पश्चात उस सरोवर में एक कोटि शिवलिंग उद्भव होनेवाले हैं ऐसा भोले भक्तों को बताया जाता है, उससे उनकी भगवानपर श्रद्धा और दृढ हो जाती है। जिस प्रकार तमिल नाडू राज्य के तिरुकुलकुंड्रम् इस गाँव में स्थित एक छोटी पहाडीपर प्रख्यात शिवजी के मंदिर के पास प्रतिदिन काशी से पक्षी स्नान के लिए आते हैं ऐसा कहा जाता है (इसीलिए इस गाँव को पक्षीतीर्थ के नाम से संबोधित करते हैं); अज्ञानी लोग कुछ चमत्कार देखे बिना तीर्थों की महिमा न समझने के कारण महान व्यक्तियों ने ऐसे स्थानों का निर्माण किया। जिस से ईश्वर के अस्तित्व की भावना अपने आप निर्माण होती है और उस भावना पर मन केंद्रिभूत करके भक्ति करने से ईश्वर संतुष्ट होकर भक्तों को मोक्षमार्ग पर चलाता है। श्रीॐकारेश्वर को स्पर्श करके, तीर्थ में स्नान करते समय पानी में तैरने वाली मछलियों को आहार देनेवाले लोगों को देखकर सिद्धारूढ़जी चिंतन करने लगे। वे मन में बोले, जहाँ जहाँ भी देखो भगवान सभी प्राणियों के लिए आहार पहुँचाता है, इसलिए अन्नप्राप्ति के लिए यत्न करना व्यर्थ है। उसी समय एक भक्त अपने साथ भरपूर फलाहार का सामान लेकर वहाँ आया और इस महात्मा को देखकर मन में बोला की यह तो ब्रह्मसागर की मछली है, इसीलिए ये फलाहार इसे अर्पण कर दूँ। उसपर उसने वह फलाहार सिद्धारूढ़जी को विनम्रता से अर्पण किये। सिद्धारूढ़जी ने फलाहार सेवन करके उस सज्जन भक्त को आशिर्वाद देकर, वही कुछ समय विश्राम करने के पश्चात वे आगे निकले। वहाँ से उन्होंने मथुरा की ओर प्रयाण किया। वहाँ उन्होंने श्रीकृष्ण भगवान का दिव्य मंदिर देखकर वृंदावन में स्थित भगवानजी का रासक्रीडास्थान देखा। वहाँ से निकलकर जब वे कश्मीर गये वहाँ उन्होंने कुछ ज्योतिषियों को खगोलविद्या के बारे में

चर्चा करते देखा और उनमें से एक को पूछा, "क्या शुभ समय (शुभ मुहूर्त) यह योग्य समय देखकर या योग्य समय न होते हुए भी तय करना चाहिए?" ज्योतिषी ने कहा, "पहले चरण के पाँचवे मुहूर्त को शुभ मुहूर्त समझकर तय करने से सबका कल्याण होता है।" उसका कहना सिद्धारूढ़जी ने स्वीकार किया। उसपर एक ज्योतिषी ने सिद्धारूढ़जी से पूछा, "किस कारण सूरज को अंशरूप में ग्रहण होता है, यह हमें बताईए।" उसपर सिद्धजी ने कहा, "जिस राशी में सूर्य प्रवेश करता है, उस राशी के नक्षत्र के नौ चरण (भाग) होते हैं। उनमें से जितने चरण सूर्य से संबंधित होते हैं, उतने अंश का सूर्यग्रहण होता है।" यह सुनकर वे सभी ज्योतिषी आनंदित हो गये। वहाँ से सिद्धारूढ़जी जब पंजाब पधारे तब वहाँ उन्हें चरकमुनी (एक भारतीय चिकित्सा पद्धति का स्थापक) के संप्रदाय का एक मनुष्य मिला। वे उसे बोले, "रोगी की पूर्ण रूप से चिकित्सा करने के पश्चात, बैद की दवा से रोगी को कहाँ तक आराम मिलेगा इसका अनुमान लगाना चाहिए। प्राण आदि मिलकर रोग के चार हिस्से होते हैं। उनमें से दो हिस्सों का ईश्वर की ध्यानधारणा करके निवारण करना चाहिए, और रहे दो हिस्सों का निवारण दवा से करना चाहिए।" उनकी ये बातें बैद को पसंद आई, उस के बाद सिद्धारूढ़जी अमृतसर गये, वहाँ वे मन में बोले की यह जगह तो पुष्करतीर्थ के समान है। वहाँ से वे आगे नानकपीठ गये। वहाँ लोग गुरुमुखि शास्त्र का अध्ययन करते हुए देखकर सिद्धारूढ़जी ने उन्हें ॐकार ध्यानधारणा की उपासना करने का बोध किया और बताया की उनकी उपासना का शास्त्राधार भी वही है।"

वहाँ से श्रीसिद्धारूढ़जी आगे कुरुक्षेत्र देखकर हरिद्वार क्षेत्र गये और उसके बाद में बट्टी गये। वहाँ नारायण आश्रम देखकर आगे केदारक्षेत्र जाकर वहाँ से ज्ञानवापी क्षेत्र आये और वहाँ पर उन्होंने विश्राम किया। पलभर निर्विकल्प समाधि में रहकर उसके बाद अजगर के समान जमीन पर तनावरहित होकर वे सो गये। उस समय शिवानंद नाम के एक संन्यासी ने उन्हें उस अवस्था में देखा और मन में कहा की यह शवासन की मुद्रा में योगाभ्यास में मग्न हुआ दिख रहा है या यह कोई ब्रह्मनिष्ठ मनुष्य होकर सहज (स्वाभाविक) अवस्था में लेटा हुआ दिख रहा है। स्वयं इस बात की प्रतीति लेने के लिए निकट आकर

उसने सिद्धारूढ़जी को स्पर्श किया। उसने स्पर्श करते ही सिद्धारूढ़जी ने आँखें खोली तब उसने पूछा, "यह आपका कौन सा आसन है?" सिद्धारूढ़जी ने उत्तर दिया, "माता के गर्भ से उत्पन्न होकर बाहर आए शरीर को ही 'मैं' ऐसे अहंकार से समझकर व्यवहार करनेवाले जीवात्मा को आसन करने के नियम बताए जाते हैं। परंतु जो सदा ही ब्रह्मस्थिति में रहता है, ऐसे मनुष्य को कोई भी आसन करने की आवश्यकता नहीं रहती।" तब वह संन्यासी बोला, "किसी वस्तु का प्रतिबिंब तथा वह वस्तु इन दोनों में क्या ऐक्य होता है या नहीं?" सिद्धारूढ़जी ने कहा, "शब्दों में बयान करने में असाध्य ऐसा जो 'तादात्म्य (एकरूपता का) सिद्धांत' है, उसके अनुसार जो उपाधि (पदवी, सनद या खिताब) निर्माण होती है तथा जिसके कारण बिंब और प्रतिबिंब इन दोनों में भेद होता है, वह आत्मानुभव प्राप्त हुए मनुष्य को दिखाई नहीं पड़ता।" संन्यासी ने फिर पूछा, "यह कैसे संभव है?" उसपर सिद्धारूढ़जी ने कहा, "आईने में चेहरा देखने जाओ तो गले का भी प्रतिबिंब दिखाई पड़ता है। उसी प्रकार प्रत्यक्ष वस्तु का बायाँ तथा दायाँ पक्ष, प्रतिबिंब में दाहिनी तथा बायीं ओर दिखाई देता है। इस प्रकार वस्तु तथा उसका प्रतिबिंब इन में भेद दिखाई देता है, परंतु अनुभवी मनुष्य को आईने में दिखाई पड़नेवाला प्रतिबिंब उसी का है यह समझने के पश्चात वह भेद अथवा अभेद जानता नहीं, इसलिए अव्यक्त ऐसा हमारा यह सिद्धांत तुम समझ लो।" वह संन्यासी हर्षित हुआ। तत्पश्चात संन्यासी ने उसके पास रखी हुई भिक्षा निकालकर दोनों में बाँट दी और दोनों ने भिक्षा का सेवन करने के बाद संन्यासी अपने आश्रम लौट गया।

अब सिद्धारूढ़जी दंडपाणी शिवलिंग के दर्शन करने निकल रहे थे की इतने में ज्वर तथा रोग से तड़पता हुआ एक ब्राह्मण उन्हीं ने देखा। तीन सालों से ज्वर से जर्जर हुए ब्राह्मण के रोग का सिद्धारूढ़जी ने निवारण किया और उसे पंचाक्षरी (ॐ नमः शिवाय) मंत्र का उपदेश करके दीक्षा दी। इस प्रकार अनेक परोपकारक कार्य करके लोगों को मोक्षमार्ग दिखाने का और जिज्ञासु व्यक्तियों के संदेहों का निवारण करने कार्य वे निरंतर कर रहे थे। जिस लोकोद्धार के लिए सिद्धारूढ़जी ने अवतार धारण किया था, उसका सार्थक हो, इसलिए यात्रा का निमित्तकारण करके वे मुमुक्षु को भवसागर के पार उतार रहे थे। अस्तु।

जिसका श्रवण करने से सभी पाप भस्म हो जाते हैं, ऐसे इस श्री सिद्धारूढ़ कथामृत का मधुर सा यह सातवाँ अध्याय श्री शिवदास श्री सिद्धारूढ़ स्वामीजी के चरणोंमें अर्पण करते हैं। सबका कल्याण हो।

॥ श्री गुरुसिद्धारूढ़चरणारविंदार्पणमस्तु ॥